Volume : 4 | Issue : 5 | May 2015 • ISSN No 2277 - 8179

# Sanhati-sadhika Sanskrit Bhasha Evam Vishavik Bhavana

Sanskrit

KEYWORDS :

**Dr. Ranjeet Kumar Tiwary**

Assistant Professor, Sanskrit Department, Women's College, Silchar Shyamaprasad Road, Shillongpatty, Silchar, Cachar, Assam, 788001

संस्कृत भाषा एवं हमारी संस्कृति ही भारत की राष्ट्रीय अस्मिता है। किसी मनीषि ने कहा 'भारतस्य प्रतिष्ठे द्वे संस्कृतं संस्कृतिस्तथा'। अभिप्राय यह की हमारी संस्कृति संस्कृत साहित्याश्रिता है। संस्कृत साहित्य मे संस्कार, सदाचार, धर्म, दर्शन, ज्ञान विज्ञान सामाजिक राजनीतिक एवं आर्थिक जीवन से संबन्धित सभी विषय-विन्दू विद्यमान हैं। आचार विचार, रहन-सहन, जीवनादर्श एवं नैतिकता आदि का मार्गदर्शन हमें संस्कृत साहित्य से ही प्राप्त होते हैं। विश्व की समस्त भाषाओं की जननी स्वरुपा, दैवी एवं मधूरा भाषा संस्कृत ही है तभी तो महाकवि दण्डी ने कहा

संस्कृतं नाम दैवी वागन्वाख्याता महर्षिभिः ।

भाषासु मधुरा मुख्या दिव्या गीर्वाणभारती ।।

भारत की राष्ट्रीय अस्मिता, एकता, अखण्डता के भाव संस्कृत साहित्य साधना से ही प्रबल एवं पुष्ट होते है। भगवान मनु भारतीयों के चरित्र पर इतना भरोसा करते हैं कि उन्होने कहा

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।

स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् सर्व एव जना भुवि।।

अर्थात इस भारत देश में उत्पन्न हुए वेदविदों ज्ञानियों से सभी देशों के सभी मनुष्य अपने-अपने चरित्र की शिक्षा प्राप्त करें। समस्त भारतीय ज्ञान-विज्ञान का मूल वेद है। वेद पर विश्वास आस्तिकता एवं निन्दा नास्तिकता का लक्षण है। मनु ने कहा- नास्तिको वेद निन्दकः। जगत् का कल्याण, विश्व-शान्ति, सौहार्द, ऐक्यादि की भावना का प्रवाह वैदिक सिद्धान्तों के आधार पर ही सम्भव है। वेद हमें समष्टि से व्यष्टि तक पहुंचने का मार्ग प्रशस्त करता है।

ऋग्वेद में कहा गया कि जिस तरह देवगण स्व-मर्यादा तथा तदनुरूप कर्तव्यों को जानकर उपासना करते है, समीप रहकर कार्य करते है, उसी प्रकार मनुष्य भी समीप रहकर, समान गति करे, समान बोले अर्थात् उन्नति का प्रयत्न करे, भेद-भाव विमूख होते हुये एक मन, बुद्धिवाले बने। परस्पर समान ढंग से मनोगत भावों को जानने का प्रयास करें। व्यक्तिगत विचारों को सर्वोपरि समझकर दूसरे के लिये कष्टदायक न बने। प्रत्येक कार्यों को अनुशासनपूर्वक करे। इस आशय का मन्त्र अधोलिखित है

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनान्सि जानताम।

देवा भागं यथा पूर्वे संजनानाम् उपासते ।।1

पुनः वेद का उपदेश प्राप्त होता है- तुम सबके विचार,

संघटन, मन और चित समान हो, यज्ञ में सबके साथ हवि डालो, तुम सबका अभिप्राय समान हो, हृदय समान हो, मन समान हो, जिससे तुम अच्छी प्रकार से रह सको। मन्त्र अधोलिखित है-

समानो मन्त्रः समिति समानी समानं मनः सह चित्तमेतेषाम।

समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि।।

समानीव आकूतिः समाना हृदयानि वः।

समानमस्तु वो मनो यथा वः सुहासति।।2

वैदिक मनीषियो ने महावाक्य सामने रखा 'सर्वे खल्विदं ब्रह्म'। अर्थात् निश्चयपूर्वक यह सब ब्रह्म ही है। यजुर्वेद मे कहा गया-

ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम।।3

अर्थात् हे मानव ! इस विशाल परिवर्तनशील विश्व में जो कुछ भी गतिविधि है, उस सबपर परम् पिता परमेश्वर का नियन्त्रण है, वरदानस्वरुप हमें प्राप्त हुआ है। जिसपर समस्त प्राणियों के अपने अपने भाग है अतः दूसरे के हिस्से पर लालच मत करो। चैतन्य महाप्रभु ने तो यहाँ तक कहा कि तृण से भी अपने आप को छोटा मानकर, वृक्ष से भी अधिक अपने आप को अधिक सहिष्णु रहते हुये, स्वयं सम्मान से दूर तथा दूसरों का सम्मान करते हुए सदा ही परमात्मा का स्मरण करते हुए अपना जीवन-यापन करे। वही रामचरितमानस मे गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा-

जड चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि।

बन्दऊ सब के पद कमल सदा जोर जुग पानि।।

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं जो सब जगह मुझे देखता हैतथा सबको मुझमें देखता है, उससे न तो मै दूर होता हूं और नहीं वह मुझसे दूर होता है।4 पुनः भगवान श्री कृष्ण कहते हैं-

श्रद्धावान्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।

ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति।।5

अर्थात् संयतेन्द्रिय होकर ज्ञान-प्राप्ति में लगा हुआ श्रद्धावान् पुरुष ज्ञान प्राप्त करता है और ज्ञान प्राप्त करके अविलम्ब परम् को पाता है। यह है भारतीय जीवन मूल्यों से युक्त जीवनादर्शों के दृष्टान्त जहॉ मैं नहीं, निज का कुछ नही, सब कुछ परमात्मा का है। जड-चेतन में, कण-कण में परमात्म-भाव दृष्टि-पूर्वक नैतिक बनने का उपदेश, जहा ईर्ष्या, द्वेष, मोह, लोभ, क्रोधादि मानवीय दुर्गुणों को विनष्ट करने के सारे उपाय सन्निहित हैं। अहं भावशून्यता ही व्यक्ति को शुद्ध सामाजिक, राष्ट्रीय एवं अन्त में विश्व-मानव के रूप में परिणत करता है।

जिस प्रकार गौ अपने बछडे से प्रेम करती है, उसी प्रकार परस्पर एक दूसरे से प्रेम करने की बात कही गयी है। मानव को चाहिये कि ईर्ष्या, द्वेष, से मूक्त रहे।6 पुनः कहा गया कि पुत्र, पिता के व्रत का पालन करे तथा माता का आज्ञाकारी सुपुत्र बने। अथर्ववेद में कहा गया

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् मा स्वसारमुत स्वसा।

सम्यञ्च सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया।।7

अर्थात् भाई-भाई आपस मे द्वेष न करे। बहन, बहन के साथ ईर्ष्या न करे। आप सब एकमत और समान व्रतवाले बनकर मृदुवाणी का प्रयोग करे। पुनः कहते हैं 'जिस प्रकार प्रेम से देवगण एक-दूसरे से पृथक् नहीं होते और न आपस में द्वेष करते हैं उसी प्रकार, उसी ज्ञान को तुम्हारे परिवार में स्थापित करता हूं। सभी लोगो में परस्पर मेल हो।8 श्रेष्ठता प्राप्त करते हुए सब लोग हृदय से एक साथ मिलकर रहो, कभी अलग न होवो। परस्पर एक दूसरे को प्रसन्न रखते हुए एक साथ मिलकर भारी बोझ को भी वहन करो। आपस में मृदु संभाषण करते हुये चलो एवं मिल-जुलकर रहो।9 पुनः मन्त्र कहता है- समान गतिवाले आप सबको सममनस्क बनाता हूं, जिससे आप पारस्परिक प्रेम से समान मन के भावों के साथ अग्रणी का अनुसरण करें। देवगण जिस प्रकार समान चित्त से अमृत की सुरक्षा करते हैं उसी प्रकार प्रातः एवं सायं आप सब लोगों की उत्तम समिति हो, साथ रहो, कभी अलग न होओ।10

वर्तमान स्थिति में पुरानी समाज-रचना के मूलाधार को पुनः आत्मसात् करने की आवश्यकता है। मूलाधार यह है कि भारतभूमि अपनी मातृभूमि है। इसे मातृभूमि मानने वाला हमारा विशाल भारतीय समाज है। जाति, पन्थ, प्रान्त आदि के भाव से ऊपर उठकर व्यक्ति व्यक्ति के प्रति बन्धुत्व भाव रखते हुये सबके साथ सुख-दुःख में समरस होने का संस्कार करते हुये एकसूत्र, राष्ट्रव्यापी संगठन और बलिष्ठ समाज का निर्माण करने की जरुरत है। यदि उस प्रकार का समाज निर्माण हो गया, तो समाज बन्धुओं के परस्पर उद्योग के फलस्वरुप समाज पहले जैसा धन, कनक-सम्पन्न, शान्तिपूर्ण, प्रगतिशील एवं प्रतिष्ठा प्राप्त जीवन का निर्माण कर सकेगा।11 नैतिक भूमि में मूल्य का जीवन व्यक्ति के अहं को सुविस्तृत कर उसे अति अहं के स्तर पर पहुंचाता है। संस्कृत साहित्य में अहं का वैश्वप्राण मे विलयन होता है। राम अपने पिता दशरथ के सदृश सर्वस्य लोकस्य हिते निविष्टं सर्वभूतहित और प्रजानां च हिते रतः12 है। अभिप्राय यह की मनुष्य का स्व गुण ही अपने चरित में आचरित होकर लोकोपकारक बन जाय तो वही नैतिक भूमि का लोकोपकारक एवं हितसाधक मूल्य विश्वकल्याण कारक हो जाता है। शास्त्रानुकूल नैतिक के क्षरण के कारण ही हमारे देश मे अलगाववाद, विद्रोही एवं विनाशोन्मुख समाज-स्थिति समुत्पन्न हुई है। इसलिये आज समय आ गया है कि हम जागे एवं समाज के सभी लोगों को उनके मोह-निद्रा से जाग्रत करें। आप्टे जी कहते हैं- इस तथ्य को ध्यान में रखकर कि 'वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः' और इस प्राचीन आदेश पर ध्यान केन्द्रित कर कि

'उतिष्ठत जाग्रत प्राप्य वराञ्निबोधयत'

सम्पूर्ण समाज के समस्त उत्तम गुणों का प्रतिनिधित्व करने वाले एकात्म मानव का स्वरुप स्वतः प्राप्त

करने का आग्रह करना चाहिये। हमें ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि जिससे सामुहिक चेतनायुक्त जीवन पुनः निर्मित हो तथा कर्मशील सामुहिक परिणामवाद के संबन्ध में आशन्कित हुआ मानव 'देवयन्तः नरः' का चरित्र समाजरुप मे प्रकट करता हुआ दिखाई दे। हमारा यह उत्तरदायित्व है कि समाज मे 'मैं एक विन्दु, परिपूर्ण सिन्धु है यह सारा मानव समाज' जैसा यथार्थ चित्र उपस्थित करते हुये अपने चरित्र अर्थात् आदर्श व्यवहार द्वारा सम्पूर्ण विश्व को शिक्षित करें।13

संस्कृत साहित्य के अध्ययन से आत्मनिष्ठ, वस्तुनिष्ठ एवं आनुष्ठानिक मूल्यों की अवधारणायें न केवल पुष्ट होते हैं अपितु मनुष्य व्यष्टि से समष्टि की ओर अग्रसर होता है। शास्त्रों में आत्मनिष्ठ मूल्यों के अन्तर्गत सत्य, तप, आस्तिक्य, शुचिता, अनिर्वेद एवं व्रत आदि परिगणित होते हैं। वस्तुनिष्ठ मूल्यों में त्याग, दान, कारुण्य, शुश्रूषा, लोकवाद एवं कर्मवाद तथा आनुष्ठानिक मूल्यों के अन्तर्गत संस्कार, अग्निहोत्र, अनुव्रत, संध्योपासन, स्वस्त्ययन एवं देवोपासना आदि की बात कही गयी है। इन मूल्यों के कारण ही भारतवर्ष प्राचीन युग से ही जगद्गुरु के पद पर आसीन रहा। आज अपने नैतिक मूल्यों के क्षरण एवं संस्कृत विद्या की उपेक्षा के कारण ही हमारे समाज में भ्रष्टाचार, बलात्कार, लूट जैसी गतिविधियाँ रुकने का नाम नहीं ले रही है।

जब भारत का अध्ययन-अध्यापन एवं व्यवहार भाषा संस्कृत थी तब भारत विश्वगुरु था। हमारे प्राचीन विश्वविद्यालय नालन्दा, तक्षशिला, विक्रमशिला में थे वहाँ दुनिया के कोने-कोने से छात्र अध्ययन के लिये आते थे। ज्योतिष, वास्तुशास्त्र, न्याय, मीमान्सा, तर्क, चिकित्सा-शास्त्र, राजनीति-विज्ञान आदि को सीखने के लिये अनेकों देशों से लोग विद्यार्थी बन कर आते थे जो आज आधुनिक शास्त्रों का अध्ययन करने के लिए विदेश से लोग नहीं आते हैं। कारण स्पष्ट है, आधुनिक शास्त्र शिक्षण व्यवस्था, भारत के अपेक्षा विदेशों में सुचारु रूप से चल रही है। विदेशीयों को जो भारत के प्रति आशा है उसे हम देने में उदासीन है। वह आशा है- संस्कृत शिक्षा एवं इसमें निहित ज्ञान-विज्ञान। वे अध्यात्म एवं शान्ति की खोज मे अपने-अपने मुल्कों में ही भारतीय शिक्षा प्राप्त करने का पथ ढूंढ रहे हैं। दुर्भाग्यवशतः, विश्व को ज्ञान का आलोक देने वाला यह देश अपने विरासत में मिले ज्ञान-विज्ञान से पूर्ण संस्कृत-साहित्य के अध्ययन पर जितना ध्यान देना चाहिये था उतना ध्यान नही दे पा रहा है। संस्कृत का प्रयोग अथवा संस्कृत शास्त्रों का अध्ययन मात्र अपनी विरासत में प्राप्त ज्ञान-विज्ञान के भण्डार के प्रति गौरव-बोध या हठधर्मिता नहीं अपितु यदि भाषावैज्ञानिक दृष्टि से विचार करें तो हमारी समस्त भारतीय भाषाओं की समृद्धि के लिये भी परम् आवश्यक है।

ईच्छा शक्ति, स्वाभिमान युवा वर्ग के हृदय में ही स्पन्दित होते है, झङ्कार मारता है। स्वतन्त्रता आन्द-ोलन में अपने जीवन पुष्पों को भारत माता के चरणों में समर्पित करने वाले देश-प्रेमी भगत सिह, राज-गुरु, चन्द्रशेखर आजाद, मदन लाल धीन्गरा, खुदीराम बोस युवा ही थे। आज युवा वर्ग को भारतीय संस्कृति आह्वान कर रही है अपनी गौरवमयी, आदिमभाषा को पुनर्ज्जीवन प्रदान करने के लिये। भारत को परम वैभव एवं विश्व गुरु पद पर पुनर्प्रतिष्ठित करने मे यदि कोई समर्थ है तो वह है- संस्कृत एवं उसका वाङ्मय। यही भारत भूमि का आभूषण, सभी भाषाओं की संरक्षिका भाषा एवं संस्कृति प्रवाहिका है। संस्कृत स्वाध्याय मात्र ही स्वकल्याण, राष्ट्र-मङ्गल एवं विश्वकल्याण का कारणभूत है।

जहाँ देवता भी जन्म लेकर भारतमाता का एक बार पुत्र कहलाने की लालसा रखते हैं, स्वप्न देखते हैं, कल्पना करते हैं। यदि इस भारत भूमि पर विदेशी आक्रमण का इतिहास देखते हैं तो हजारो वर्षों के संघर्ष की लम्बी गाथा हमें प्राप्त होती है। कारण 'शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे शास्त्रचर्चा प्रवर्तते' किन्तु शस्त्र से सुरक्षित जब राष्ट्र ही नहीं तो शास्त्र की रक्षा भला कैसे हो सकती है। आक्रमणकारी, शासन के साथ-साथ हमारे ऊपर अपनी भाषा भी लादते गये। संस्कृत, राज-शासन से उपेक्षिता होती चली गयी, उपासना, अध्यात्म की भाषा के रूप मे सीमटती चली गयी। संस्कृति भाषा-साहित्याश्रिता होती है। भाषा की हानि से संस्कृति को हानि पहूंचती है। इतिहास के आलोक में यदि कहें तो, जिस-जिस क्षेत्र मे भारतीय-संस्कृति का हास हुआ उस-उस क्षेत्र में दरार आई, भारत का विभाजन हुआ। भारत को चीरकर अफ़गानिस्तान, नेपाल, भूटान, बर्मा, तिब्बत, श्रीलङ्का, पाकिस्तान आदि देशों का निर्माण होता गया। जम्मू-कश्मीर में अलगाववादी आज भी ताण्डव मचा रहे हैं। भारत की अखण्डता यदि हमारा स्वप्न है तो हमे अपनी संस्कृति की रक्षा आवश्यक हो जाती है। भारत की आत्मा इसकी अपनी संस्कृति है। संस्कृति विविध है और विविधता में एकता इसका गुण है। विविध संस्कृति में समन्वय-स्थापनपूर्वक समाज-जीवन, राष्ट्र-जीवन तथा सम्पूर्ण जगत् को ही एक परिवार के रूप में देखने की सुदृष्टि हमें संस्कृत साहित्य के अध्ययन से प्राप्त होते हैं। जहा अपने और पराये मे कोई भेद नही रह जाता है-

अयं निजः परो वेति गणना लघु चेतसाम्।

उदारचरिताना तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।14

सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय की भावना से ग्रसित हमारे मनीषि उद्घोष करते हैं-

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखभाग् भवेत्।।

संदर्भ-सूची

1. ऋग्वेद, 10/191/2
2. ऋग्वेद, 10/191/3-4
3. यजुर्वेद, 40/1
4. श्रीमद्भगवगीता, 6/30
5. श्रीमद्भगवगीता, 4/39
6. अथर्ववेद, 5/19/1
7. अथर्ववेद 5/19/3
8. अथर्ववेद 5/19/4
9. अथर्ववेद 5/19/5
10. अथर्ववेद 5/19/7
11. आप्टे उमाकान्त केशव, भारतीय समाज चिन्तन, जागृति प्रकाशन, नोएडा, 1990, पृ.-54
12. रामायण, 2/2/54, 1/1/12, 3/65/4
13. आप्टे उमाकान्त केशव, भारतीय समाज चिन्तन, जागृति प्रकाशन, नोएडा, 1990, पृ.-49
14. हितोपदेश, 1/69